Shodh, Samiksha aur Mulyankan (International Research Journal)—ISSN-0974-2832 Vol. II, Issue-8 (Sept-2009)

नारी शिक्षा, स्वतंत्रता एवं समानता [धर्मशास्त्रीय परम्परानुसार]

शोधपत्र-संस्कृत

*** सीमा चौधरी**

वर्तमान समय में नारी अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बना हुआ है। नारी की पराधीनता एवं पिछड़ी सामाजिक दशा हमारे वर्तमान समाज की प्रमुख समस्याओं में से एक ज्वलन्त समस्या है। सृष्टि की मेरूदण्ड नारी को विश्व के सभी राष्ट्रों की संस्कृति का आधार माना गया है। विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रखने वाली नारी की स्थिति में सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान सामाजिक क्षेत्र में नारी को अनेक यातनाएँ खुलेआम या घर के बन्द दरवाजे के पीछे सहन करनी पड़ रही है। दिन–प्रतिदिन सामाजिक अत्याचार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में नारी अधिकारों पर विचार–विमर्श करना अतिआवश्यक है। नारी अधिकारों के हनन का मुख्य कारण भी नारी अधिकारों का प्रकाश में नहीं आना एवं धार्मिक परम्पराएँ हो सकती है, क्योंकि किसी देश की सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना को उसकी सामाजिक परम्पराएँ प्रभावित करती हैं इसी सन्दर्भ में कुछ विद्वानों की मान्यता है।

दूसरी ओर कुछ विद्वानों का मानना है कि धर्मशास्त्रीय–परम्परा में नारी का उच्च स्थान है – इनके अनुसार धर्मशास्त्र–परम्परा में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।' जैसे उल्लेख है जो नारी को ज्ञान और सम्पत्ति का पुंज मानते हैं, समाज में उसे आदरणीय स्थान प्रदान करते हैं, इन विद्वानों का यह भी मानना है कि धर्मशास्त्रीय–परम्परा में नारी और पुरूष दोनों को समान दर्जा दिया गया है और पुरूष के अभावमें नारी को व नारी के अभाव में पुरूष को अपूर्ण माना गया है।

स्वतन्त्रता का अधिकारः– वैदिक युग में स्त्रियों को कुछ स्वतंत्रता भी प्राप्त थी। उन्हें अपनी रूचि का पति चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वेदों में वर्णन मिलते हैं कि पर्वों या विशेष सामाजिक उत्सवों में आभूषणों से अलंकृत स्त्रियाँ अपने प्रेमियों को मोहने के लिए जाती थी।[1] अथर्ववेद में प्रेमी द्वारा प्रेमिकाओं को दिए जाने वाले उपहारों का वर्णन है।[2] वैदिक युग में युवक तथा युवतियों को अपने योग्य जीवन साथी का चुनाव करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। ऋग्वेद काल में स्वयंवर होते थे।[3] इसी प्रकार स्त्री को पति का चुनाव करने की स्वतंत्रता महाकाव्यकाल में भी थी।[4] विषम परिस्थितियों में नारी को धनार्जन करने की भी स्वतंत्रता थी। वधु को यह आशीर्वाद दिया जाता था कि वह सभा में आत्मविश्वास से बोले।[5] अतः नारी को सभा में बोलने की स्वतंत्रता प्राप्त थी।

किन्तु धर्मशास्त्रीय–परम्परा के स्मृति युग में नारी की स्वतंत्रता का हनन हुआ, स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्मृतिकाल में स्त्रियों की दशा उत्तम नहीं रही, स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया और उन्हें वेद आदि के अध्ययन से वंचित किया गया तथा मनु, गौतम आदि ने स्त्रियों को अस्वतन्त्र माना है।[6] मनु के अनुसार स्त्री को बचपन में, जवानी और बुढ़ापे में भी अपनी इच्छा से कोई काम नहीं करना चाहिए। पिता, पति और पुत्र की आज्ञा से ही कोई काम करना चाहिए।[7] इसी प्रकार वशिष्ठ और बौध ाायन के अनुसार स्त्री स्वतंत्र नहीं है।[8] मनु के अनुसार स्त्री बचपन में पिता के, यौवानावस्था में पति के एवं मर जाने पर बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहे।[9] स्वतंत्र कभी न रहे। इस प्रकार स्मृति काल में नारी की स्वतंत्रता का पूर्ण रूप से हनन कर उसे अन्य के अधीन माना है। मनु, वशिष्ठ और बौधायन के मतानुसार स्त्री की रक्षा बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करते है। इनके अनुसार स्त्री स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है[1] गौतम स्मृति और नारद स्मृति के अनुसार भी स्त्री स्वतंत्र नहीं है[2] क्योंकि बृहत् पराशर स्मृति और नारदीय स्मृति के अनुसार स्वतंत्रता से कुलीन स्त्रियाँ भी बिगड़ जाती हैं, अतः स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर रोक लगाई गई है। मनु के अनुसार नारी को पिता, पति, और पुत्र से पृथक रहने की कभी इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके अभाव से स्त्री, पिता और पति दोनों के वंशों को निंदित कर देती है।[3] उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि धर्मशास्त्र परम्परा में नारी को स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त नहीं था।

* टीचर्स रिसर्च फैलो, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

समानता का अधिकारः—वेदों में नारी का जो वर्णन हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि उस समय समाज में नारी को समानता का अधिकार प्राप्त था। नारी पुरूष की सहभागिनी और सहायिका थी। स्त्री—पुरूष के साथ यज्ञ में बैठती थी और उसे यज्ञ करने का अधिकार था, वह युद्ध में पुरूषों के साथ जाया करती थी और युद्ध कार्यों में भाग भी लेती थी।[4] ब्राह्मण ग्रन्थ व उपनिषदों में भी नारी को पति की अर्धांगिनी बताया है, आपतम्ब धर्मसूत्र ने पति—पत्नी को धार्मिक कृत्यों में समान माना है।[5]

हालांकि धर्मशास्त्रकार गृहस्थ जीवन में पत्नी के अत्यधिक महत्व को मान्यता देते हैं। उनके अनुसार पत्नी पति को दो प्रकार के ऋणों से मुक्त करती है पति के साथ यज्ञ में भाग लेकर देवऋण से तथा पुत्र उत्पन्न करके पितृऋण से। वेद में स्मृतियों में, लोकाचार में पत्नी को विद्वानों द्वारा पति का आधा शरीर कहा गया है, पुण्य और पाप के फल वह पति के साथ तुल्यरूप में ग्रहण करती है। स्त्री अर्धांगिनी मानी गई है, अतः स्त्री और पुरूष दोनों को एकसमान अधिकार प्राप्त है और दोनों के लिए एक ही समान व्रत करने का अधिकार है।[2] सती साध्वी पुत्री भी सास—ससुर और माता—पिता को स्वर्ग पहुँचा देती है अतः पिता के लिए पुत्र और पुत्री समान है, दोनों ही उसके वंश को चलाने वाले है अतः पुत्र और पुत्री में भेद न करें।[3]

शिक्षा का अधिकारः— वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था उन्नत थी, बहुत—सी—नारियों ने वैदिक ऋचाएँ तक रची हैं जैसे— अत्रि कुल की विश्ववारा ने ऋग्वेद का 5.28 सूक्त रचा है। अपाला ने ऋग्वेद का 8—11 और घोषा काक्षीवती ने ऋग्वेद का 10.38 सुक्त रचा है। ऋग्वेद में 21 ऋषिकाओं का उल्लेख है, इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या सैंकड़ों में है, ये मन्त्र अधिकांशतः दशम मण्डल में हैं बृहदारण्यक उपनिषद् में दो विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है।[1] सूत्रकाल में भी स्त्रीशिक्षा का प्रचलन था स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। गार्गी वाचक्नवी, वडवाप्रतिथेयी एवं सुलभा मैत्रेयी इन तीन शिक्षिकाओं को ऋषि रूप में सम्बोधित किया गया है।[2] वाल्मीकी रामायण में भी वर्णन मिलता है कि उस समय स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। महाभारत में माता को सर्वश्रेष्ठ गुरू बताया गया है (सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और माता से बढ़कर कोई गुरू नहीं है।[3] जो आजीवन आध्यात्म तथा दर्शनशास्त्र की छात्रा थी द्वितीय श्रेणी की छात्राएं 'सद्योवधू' कहलाती थीं और विवाह के पूर्व तक ये अपना अध्ययन जारी रखती थी, कन्याओं के लिए वेदाध्ययन आवश्यक था, क्योंकि स्त्रियों को नियमित रूप से प्रातः, संध्या वैदिक प्रार्थनाएँ करनी पड़ती थीं और पत्नियाँ यज्ञादि में अपने पति के साथ मंत्रोच्चारण करती थी।[5]

अध्ययन के पश्चात् कुछ स्त्रियाँ अध्यापन का कार्य भी करती थीं उपनिषदों में स्त्री शिक्षिकाओं का वर्णन है, किन्तु वे विवाहित थी अथवा अविवाहित यह स्पष्ट नहीं है। शिक्षिकाओं को 'उपाध्याया' कहा जाता था।[6] आश्वालायन गृह्यसूत्र से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में नारी शिक्षा की व्यवस्था थी और नारी को शिक्षा देने के लिए शिक्षिकाएं भी होती थीं।[1] वृद्धहारीत और भृगुस्मृति में स्त्रियों और शूद्रों के उपनयन और वेदाध्यन की व्यवस्था दी गई है। वृद्धहारीत ने स्त्रियों को मन्त्रों के पाठ का अधिकारी माना है।[2] भृगु का कथन है कि बालक और बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार पाँच वर्ष की अवस्था में होना चाहिए और उन्हें वेदाध्यन करना चाहिए।[3] पाँच वर्ष की अवस्था में कन्याओं को गुरूकुल में भेज देना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि नारी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।

किन्तु धर्मशास्त्रीय—परम्परा के स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नारी के शिक्षा प्राप्ति अधिकार का हनन हुआ है मनु[4] तथा याज्ञवल्क्य[5] की व्यवस्था ने स्त्रियों की शिक्षा को अत्यन्त आघात पहुँचाया। इन्होंने स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में रखा और उन्हें वेद आदि के अध्ययन से वंचित किया गया। मनु गौतम आदि ने स्त्रियों को अस्वतंत्र माना है[6] मनु तथा याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के विवाह संस्कार को ही उपनयन रूप मानकर ही पति सेवा को ही गुरूकुल बना दिया और यहीं से ही स्त्रियों की पर—निर्भरता का आरम्भ होता है, इतना ही नहीं धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों के विरूद्ध षडयंत्रसा रच डाला तथा वैदिक अध्ययन के अतिरिक्त अन्य मामलों में भी उन्हें शूद्रों के समकक्ष रखकर उनकी शिक्षा समाप्त कर दी। स्मृतियों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि सहशिक्षा का पूर्णतः निषेध था मनु स्पष्ट रूप से सहशिक्षा के विरूद्ध हैं। उनका कथन है कि स्त्रियाँ काम—क्रोध के वशीभूत होकर विद्वान पुरूष को भी कुमार्ग पर ले जाती हैं। बलवान इन्द्रियाँ विद्वान् को भी अपथ पर ले जाती है। अतः माता, बहिन, पुत्री आदि के साथ भी एकान्त में न रहे।[7] इससे स्पष्ट होता है कि स्मृतियाँ नारी को शिक्षा का अधिकार प्रदान नहीं करती।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आश्व, 3.4 2. वृ. हरित 3.6 3. भृगु, 3.40 —43, 10.1—15 4. मनुस्मृति —2/7 5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/13 6. मनु.9/3, गौतम 18/1 7. मनु. 2.214—215